www.dalitdastak.com

www.youtube.com/c/dalitdastak

आधारहीन है क्रीमीलेयर की अवधारणा

स्पेशल स्टोरी 5

ISSN 2347-8357

दलित दस्तक

दरकिनार कर दिए गए समाज की आवाज

वर्षः 09, अंक 12-01, मई-जून 2020 | मूल्य ₹ 35/-

25 राज्य | तीन लाख पाठक

कोरोना के बाद बहुजनों की चुनौती

'दास पब्लिकेशन' द्वारा प्रकाशित पुस्तकें मंगवाने के लिए संपर्क करें

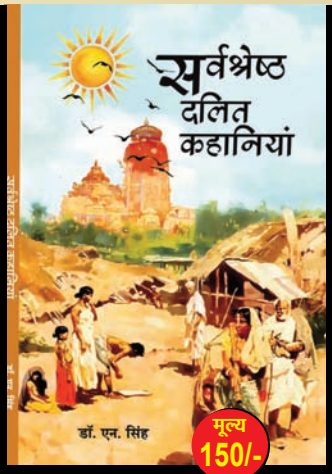

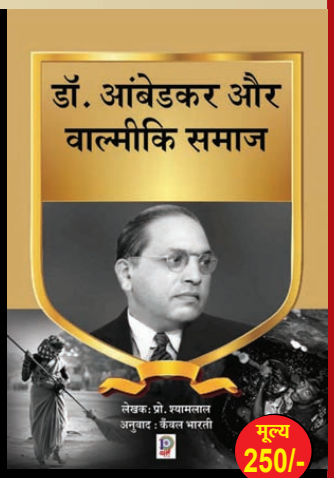

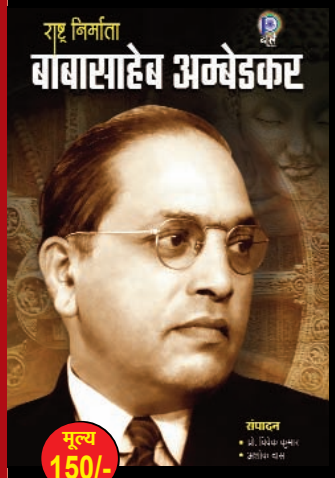

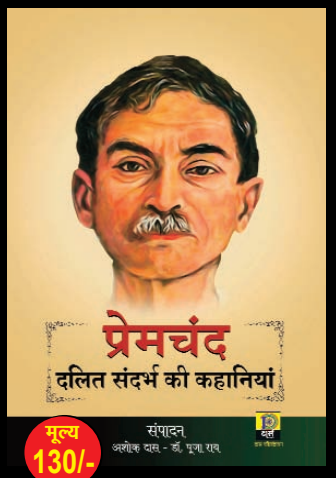

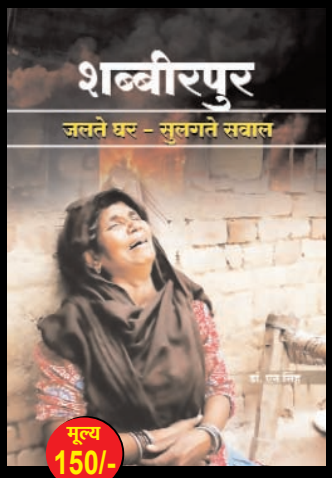

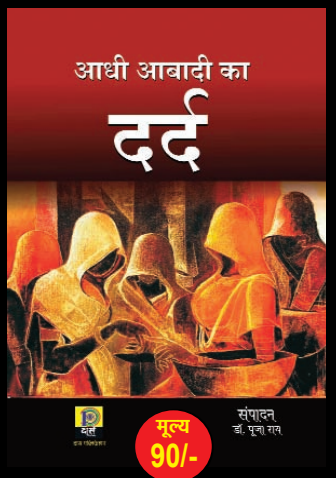

खाता का विवरण :-

दास पब्लिकेशन

A/C- 1518002100509569

पंजाब नेशनल बैंक

पटपड़गंज, दिल्ली- 110092

IFSC- PUNB0151800 (5th Digit 0 Zero)

9013942612 या 011-41427518 पर।

ई-मेल- dalitdastak@gmail.com

दलित दस्तक

वर्ष: 9, अंक : 12-01, मई - जून 2020 , पृष्ठ संख्या-44 (आवरण सहित)

www.dalitdastak.com
Web Channel- youtube.com/c/dalitdastak
E-mail- dalitdastak@gmail.com

संपादक

अशोक दास

011-41427518

ब्यूरो चीफ (लखनऊ, गोरखपुर, बस्ती, पूर्वांचल)

राजकुमार – 07258938929

ब्यूरो चीफ (झारखंड)

रणजीत कुमार– 09525484730

ब्यूरो चीफ (बिहार)

सुशील कुमार– 9334270889

विज्ञापन एवं प्रसार

वीरेन्द्र कुमार – 9013942612, 011-41427518

पेज डिजाइन

प्रवीण कुमार गौड़ - 8010520549

संपादक मंडल (अवैतनिक)

प्रो. विवेक कुमार
शांति स्वरूप बौद्ध
जे.सी आदर्श
डॉ. पूजा राय

संपादकीय कार्यालय

डी-23, पहली मंजिल, पांडव नगर
नई दिल्ली-110092
फोन नं.-011-41427518, मो.- 9013942612

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी अशोक कुमार द्वारा एक्सपो प्रिंट एंड मीडिया प्रा. लिमिटेड, 97/12 ज्वाला हेड़ी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली– 100063 से मुद्रित व मकान संख्या– 804, ब्लॉक–के, मंगोलपुरी, दिल्ली–110083 से प्रकाशित।

Like on Facebook :
https://www.facebook.com/dalitdastak5

अंक में प्रकाशित सामग्री के आंशिक या पूर्ण रूप से पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। लेखक के विचार व्यक्तिगत हैं। प्रकाशित सामग्री में दिये गये तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखक का है। संपादक, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक मंडल इसके लिए हरगिज उत्तरदायी नहीं होंगे। किसी भी प्रकार के विवाद के निपटारा हेतु न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

मुद्दा **09**

भारतीय न्यायपालिका में वंचितों के प्रतिनिधित्व का इतिहास

धम्म चर्चा **13**

एक अच्छा बौद्ध कैसे बनें?

मुद्दा **15**

असंग घोष विजय यात्रा की कविता रचने वाले कवि

सम्मान **24**

दलित दस्तक को 'मूकनायक एक्सीलेंसी इन जर्नलिज्म अवार्ड'

राजनीति **26**

क्या शून्यता की ओर बढ़ रही है दलित राजनीति और दलित आंदोलन

30 आधी अबादी

कृष्णमल्ल जगन्नाथन : जिन्होंने वंचितों के जमीन अधिकार के लिए लगा दी जिंदगी

कृष्णमल्ल जगन्नाथ के कई परिचय हैं. उनमें सबसे बड़ा परिचय यह है कि वह समाज के आखिरी छोर पर खड़े लोगों के हक के लिए काम करने वाली ऐसी समाजसेवी हैं, जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी इनके हक के लिए लगा दी है.

कई लोगों को मेरा फैसला पसंद नहीं था : प्रभाकर ग्वाल भेदभाव **34**

पुलिस वाले बहुत निर्दोष आदिवासियों को बेवजह नक्सली के नाम से, नक्सलियों से संबंध का आरोप लगाकर जेल में ठूंस देते हैं. यदि उनकी रिहाई के आदेश जारी होते तो यह ऊंचे, चतुर चालाक लोगों को नहीं भाता था.

अशोक दास
(संपादक)
editorashokdas@gmail.com

न्यायपालिका के निशाने पर आरक्षण और कोरोना काल में वंचित समाज

भारत किसी शेषनाग के फन पर नहीं टिका, जैसा कि एक वक्त में लंबे समय तक धारणा फैलाई जाती रही थी. भारत का बोझ दरअसल देश के उस गरीब तबके के कंधे पर टिका है, जो पिछले दो महीनों से सड़कों पर मारा-मारा फिर रहा है. जिसे जानवरों सरीखा बसों में ठूस कर घरों की ओर रवाना किया जा रहा है. और जो पिछले ढाई महीने से कोरोना की ड्यूटी में लगने के कारण फ्रस्टेड हो चुके पुलिसकर्मियों की लाठियां और गालियां भी खा रहे हैं.

बीते दिनों दो मुद्दे महत्वपूर्ण और चर्चा में रहे. जाहिर है कि पहला मुद्दा कोरोना के कारण विस्थापित हो गए देश के लाखों मजदूरों का रहा, जिसमें एक शहर से दूसरे शहर, एक राज्य से दूसरे राज्य सैकड़ों किलोमीटर सड़क नापते मजदूर थे. तो दूसरा मुद्दा देश की न्यायपालिका का है, जो देश के वंचितों को मिलने वाले आरक्षण को लेकर लगातार टिप्पणियां कर रही है. लेकिन पहले बात उन लोगों की जिनकी पीठ पर इस देश का भार टिका है.

जी हां, भारत किसी शेषनाग के फन पर नहीं टिका, जैसा कि एक वक्त में लंबे समय तक धारणा फैलाई जाती रही थी. भारत का बोझ दरअसल देश के उस गरीब तबके के कंधे पर टिका है, जो पिछले दो महीनों से सड़कों पर मारा-मारा फिर रहा है. जिसे जानवरों सरीखा बसों में ठूस कर घरों की ओर रवाना किया जा रहा है. और जो पिछले ढाई महीने से कोरोना की ड्यूटी में लगने के कारण फ्रस्टेड हो चुके पुलिसकर्मियों की लाठियां और गालियां भी खा रहे हैं. और देश की राजनीति और राजनेता इस बहस में लगे हैं कि उन मजदूरों का सबसे बड़ा हितैषी कौन है.

लेकिन मेरे मजदूर भाईयों, सच्चाई यह है कि दरअसल तुम्हारा हितैषी कोई नहीं है. कम से कम सरकारें तो नहीं ही हैं. क्योंकि अगर वो तुम्हारे दुख के बारे में सोचती तो रातो-रात ऐसा कदम नहीं उठाती, जिससे तुम सुबह होते ही खुद को सड़क पर पाते. सरकारें ऐसा नहीं करती, जिससे तुम अपनी बूढ़ी मां और दूधमूहें बच्चे को लेकर पैदल ही सैकड़ों किलोमीटर निकल जाते. सरकारें अगर तुम्हारे बारे में सोचती तो तुम इस कोरोना काल में भी सुरक्षित रहते. सरकारें तुम्हारे लिए बेहतर इंतजाम करती.

तुम्हारे गुनहगार वो भी हैं, जो नारे लगाते फिरते थे कि देश के मजदूरों एक हो. क्योंकि जब सालों बाद या फिर शायद पहली बार जब उन्हें मजदूरों को एक करने का मौका मिला तो वो जाने किस रतिसुख में व्यस्त थे कि उनकी आवाज तक नहीं निकली. और खुद अपनी लड़ाई लड़ने की आपकी आदत रही नहीं. आज हमारे देश के मजदूरों की सच्चाई यह है कि करोड़ों मजदूर महज दो वक्त की रोटी के गुलाम हैं. और वो मजदूर हैं कौन? दलित, आदिवासी, पिछड़े और पसमांदा समाज के लोग. बात आज की नहीं है, सदियों से ये लोग देश को सींचते आ रहे हैं. देश की हर ऊंची और शानदार इमारत में सीमेंट और रेत के साथ इन लोगों का खून और पसीना भी मिला होता है. और इनकी नियति में आती है वही दो जून की रोटी, गांव की झोपड़ी, बच्चों की शिक्षा के नाम पर सरकारी स्कूल और इलाज के लिए सरकारी अस्पताल. ये दो वक्त की रोटी मजदूरों की सांसे कायम रखती है, ये स्कूल इस भ्रम को जिंदा रखते हैं कि गरीबों के बच्चे भी पढ़ रहे हैं, और ये अस्पताल मरने से पहले की तकलीफ को थोड़ा कम कर देते हैं. इसके अलावा कुछ सरकारी योजनाएं, जिसके बूते देश के सत्ताधारी इन गरीबों को यह एहसास दिलाते हैं कि उन्हें श्रमिकों की फिक्र है. वरना ऐसा होता नहीं है कि कोई सरकार चाह दे और जिद् कर ले तो अपने देश के लोगों के हालात को बदल न दे. लेकिन यह भारत देश का दुर्भाग्य है कि यहां की सरकारें बुलेट ट्रेन और स्मार्ट सिटी के सपने तो देखती है, लेकिन गरीबों की गरीबी मिटाने के सपने नहीं देखती. खैर ये अनंत कथा है.

एक दूसरा बड़ा मुद्दा न्यायापालिका का है. 6 मई को रिटायर हुए सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस दीपक गुप्ता ने अपने ऑनलाइन फेयरवेल के दौरान कहा कि देश का लीगल सिस्टम अमीरों और ताकतवरों के पक्ष में हो गया है. अगर यही बात कोई आम आदमी कह दे तो तुरंत न्यायपालिका के मान-सम्मान को ठेस पहुंच जाती, लेकिन चूकि ये बात एक जस्टिस ने खुद कही तो इसमें सच्चाई तो है ही. फरवरी से लेकर बीते दिनों तक सुप्रीम कोर्ट के जजों ने आरक्षण को लेकर ऐसी-ऐसी टिप्पणी की है, जिसमें सीधे तौर पर एक खास समुदाय के प्रति अदालतों के मन के पूर्वाभास का पता चलता है. आरक्षण और क्रिमिलेयर के मुद्दे पर जिस तरह वो एक के बाद दूसरी टिप्पणियां कर रही है और राज्य सरकारों को संबोधित कर रही है, लगता है कि अदालत जल्दी ही आरक्षण पर कोई बड़ा फैसला ले सकती है, या फिर अदालत के बहाने सरकार ऐसा कर सकती है. समाज को इन दोनों मुद्दों को समझना होगा और जिनके हाथ में राजनीतिक, पूंजी, न्याय और मीडिया की सत्ता है, उन पर नजर रखते हुए अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने को तैयार रहना होगा. ■

जय भीम जय जोतिबा जय बिरसा

प्रो. विवेक कुमार

आधारहीन है क्रीमीलेयर की अवधारणा

जब बाबासाहब आंबेडकर ने 'साउथबरो कमेटी ऑन फ्रैन्चाइस' के समक्ष 27 जनवरी 1919 को अपना पक्ष रखा तो उसमें पहली बार 'आरक्षण' का आधार प्रतिनिधित्व वह भी स्व प्रतिनिधित्व बताया. साउथबरो कमेटी सरकार को चुनने में लोगों की क्या भूमिका होगी, इस तथ्य को रेखांकित करने के लिए बनाई गयी थी. सरकार एक अच्छी सरकार कब बनती है, बाबासाहब ने इस तथ्य को तार्किकता से समझाया. बाबासाहब ने कहा कि केवल लोगों के जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार ही अच्छी सरकार नहीं होती, बल्कि एक अच्छी सरकार वह होती है, जिसमें लोगों को स्वप्रतिनिधित्व भी दिया जाय. अतः लोकप्रिय सरकार के लिये लोगों के जनमत एवं लोगों का स्वयं का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक होता है, ऐसा बाबासाहब का मानना था. दर्शन के आधार पर हम देखें तो आरक्षण का आधार प्रतिनिधित्व है, आर्थिक उत्थान नहीं. स्वप्रतिनिधित्व का दूसरा आधार भी आर्थिक नहीं था. प्रजातांत्रिक सरकार में अगर सभी समाजों का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ तो यह प्रजातंत्र के हित में नहीं होगा, क्योंकि, अगर एक ही समाज सत्ता में बना रहेगा तो वह हमेशा राजा बने रहेंगे और दूसरे लोग सदा उसकी प्रजा बने रहेंगे. राजा हमेशा प्रजा के लिए कानून बनाता रहेगा और प्रजा उसका पालन करती रहेगी. इस स्थिति में प्रजातंत्र कैसे स्थापित हो सकेगा. अतः हमें मजबूत प्रजातंत्र की स्थापना करनी है तो जो प्रजा है, उसमें से भी कुछ लोगों को कानून बनाने के लिए चुना जाना चाहिए, जिससे प्रजातंत्र की स्थापना हो सके. इसका अर्थ यह हुआ कि बाबासाहब के स्व-प्रतिनिधित्व की स्थापना हो सके. इसका अर्थ यह हुआ कि बाबासाहब के स्व-प्रतिनिधित्व मांगने का दूसरा कारण प्रजातंत्र की जड़ों को मजबूत करना एवं उसे और भी प्रतिनिधित्वकारी एवं सहभागी बनाना था. अच्छी सरकार के गठन एवं प्रजातंत्र की स्थापना के साथ-साथ बाबासाहब आंबेडकर द्वारा स्वप्रतिनिधित्व मांगने का तीसरा कारण भी था, जिसमें उन्होंने कहा था कि अस्पृश्यों के अपने हितों का एक संग्रह है. ये हित है उनकी सुरक्षा, स्वतंत्रता एवं कानून के समक्ष समानता. प्रतिनिधित्व का अधिकार एवं सरकारी कार्यालयों में नौकरी ये दो ऐसे अधिकार हैं जो व्यक्तियों को नागरिक बनाते हैं. लेकिन ये सभी अधिकार अस्पृश्यतों (दलितों) के पास नहीं है. अतः दलितों को अपने हितों एवं अपनी कठिनाईयों को रखने के लिए बाबासाहब ने दलितों के स्वप्रतिनिधित्व की बात साउथबरो कमेटी के सामने रखी. इतना ही नहीं, उन्होंने दलितों के प्रतिनिधित्व की संख्या को भी रेखांकित करते हुए कहा कि दलितों की संख्या इतनी हो, जिससे वे प्रभावी तरीके से अपनी मांगों को मांगा सके. शायद इसीलिये बाद में बाबासाहब आंबेडकर ने राजनीति में विधायक एवं सांसदों के चुनाव में ही नहीं, बल्कि कैबिनेट में भी आरक्षण की मांग की. (देखें, गांधी एवं कांग्रेस ने अछूतों के लिए क्या किया) चौथी ओर समान न्याय की व्यवस्था लागू करने के लिए बाबासाहब आंबेडकर ने प्रशासनिक व्यवस्था में भी दलितों एवं पिछड़ों के स्वप्रतिनिधित्व की मांग की.

बाबासाहब के अनुसार आरक्षण का आधार

बाबासाहब का मानना था कि समान न्याय के सिद्धांत की शुरुआत करना एक बात है. कोई भी सरकार इसे शुरू कर सकती है. परन्तु समान न्याय के सिद्धान्त को जमीनी स्तर पर प्रभावी रूप से लागू करने का उत्तरदायित्व प्रशासनिक व्यवस्था अर्थात सिविल सेवा का होता है. अगर सिविल सेवा यथास्थितिवादी व्यवस्था की पक्षधर निकली तो समान न्याय व्यवस्था का सिद्धांत कैसे लागू हो पाया है. भारत में भी अंग्रेजों के आने के बाद हुआ यह कि अंग्रेजों ने अपने प्रशासन में ऐसे लोगों को भर्ती कर लिया जो पुरानी हिन्दू व्यवस्था मानने वाले थे और जिनमें समता के सिद्धान्त का अभाव था. यह स्थिति तभी ठीक हो सकती है जब हम अपने प्रशासनिक ढांचे में सभी जातियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करें, विशेष कर पिछड़ी जातियों को. और यह काम संविधान में एक धारा जोड़ कर किया जा सकता है. अगर ऐसे व्यवस्था नहीं की गयी तो दलित एवं पिछड़ों का प्रतिनिधित्व अभिशासन एवं कैबिनेट में नहीं हो पायेगा.

इसलिए यह बात प्रमाणित होती है कि बाबासाहब ने आरक्षण जिसे वह प्रतिनिधित्व कह रहे थे, को दलितों की गरीबी दूर करने के लिए नहीं मांगा बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए इसकी मांग रखी थी. दलितों के स्वप्रतिनिधित्व का पांचवां कारण बाबासाहब ने नैतिक बताया. बाबासाहब आंबेडकर ने दलितों के स्वप्रतिनिधित्व के संदर्भ में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा अंग्रेजी सरकार में भारतीयों के प्रतिनिधित्व को लेकर दायर की गयी याचिका में गोपाल कृष्ण गोखले ने 1885 में आये पब्लिक सर्विस कमीशन से गुहार लगाई कि 'ब्रितानिया साम्राज्य की सरकार में भारतीयों को नौकरी नहीं मिल पा रही है. उनको ब्रितानिया सरकार में प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाने से भारतीय अपने पूर्ण पौरुष को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं. वे अपनी क्षमता एवं सामर्थ्य को खोते जा रहे हैं. उनमें बौनेपन और छोटे होने की भावना पैदा हो रही है.' बाबासाहब ने भारतीयों एवं दलितों में एक समानान्तर रेखा खिंचते हुए कहा कि भारत में अंग्रेजों का शासन आये हुए केवल 150 साल हुए हैं और केवल इसी डेढ़ सौ साल ही में आपकी क्षमता,

सामर्थ्य एवं पौरुष का नाश हो रहा है. आपका कद बौना हो गया है. जरा कल्पना कीजिए कि आपने तो दलितों को हजारों वर्षों से सभी अधिकारों से वंचित कर रखा है. सरकार तो छोड़िये, ऐसे में हमारी क्षमता का क्या हुआ होगा? हमारे सामर्थ्य, हमारे पौरुष का क्या हुआ है, यह आपने कभी सोचा है. इसलिए दलितों के साथ किये गये अमानवीय व्यवहार के कारण भी दलितों को सरकार में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये. यह नैतिकता का तकाजा है कि आपको उन्हें प्रतिनिधित्व देना चाहिए. आरक्षण के उपरोक्त आंकलन से हमें ज्ञात होता है कि बाबासाहब ने कम से कम पांच ऐसे आधार बनाये थे, जिस आधार पर उन्होंने आरक्षण की मांग की या उसे आरक्षण का आधार बनाया.

1. आरक्षण अर्थात प्रतिनिधित्व एक समावेशी सरकार के लिए

2. सहभागी प्रजातंत्र की स्थापना के लिए प्रतिनिधित्व-प्रजातंत्र की स्थापना

3. दलितों के अपने विशिष्ट हितों की पूर्ति के लिये प्रतिनिधित्व

4. प्रभावी न्याय व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रतिनिधित्व

5. दलितों को नैतिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व

उपरोक्त आधारों में बाबासाहब ने प्रतिनिधित्व को लोगों के आर्थिक उत्थान से कहीं नहीं जोड़ा, इसलिये जिन दलितों की आरक्षण के माध्यम से नौकरी लगी है और वे आर्थिक रूप से उन्नत हो गये हैं, उन्हें आरक्षण के लाभ से आर्थिक आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता.

आरक्षण का आधार आर्थिक क्यों नहीं

आरक्षण का आधार आर्थिक नहीं है और किसी दलित परिवार या जाति को आर्थिक उन्नति एवं प्रगति के लिये आरक्षण नहीं दिया गया है, न ही कहीं ऐसा लिखा हुआ है कि किसी दलित को एक बार आरक्षण मिलने से उस दलित और उस दलित परिवार एवं जाति की सभी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य आदि पिछड़ापन दूर हो जायेंगे.

बार-बार यह प्रश्न उठाया जा रहा है कि जिस दलित समाज ने एक बार आरक्षण का लाभ ले लिया है, उसे या उस परिवार को स्वतः आरक्षण का लाभ छोड़ देना चाहिए. यह अजीब बचकाना तर्क है. विशेष कर यह सवर्ण समाज द्वारा फैलाया हुआ तर्क है. अब आप ही सोचिये कि सवर्ण समाज के पास हजारों वर्षों की जिस सांस्कृतिक पूंजी का भंडार है, क्या उससे दलित समाज एक बार आरक्षण से कमाई गयी सांस्कृतिक पूंजी से सामना कर सकता है?

सांस्कृतिक पूंजी में सवर्ण समाज की बढ़त

इस संदर्भ में सांस्कृतिक पूंजी की अवधारणा की व्याख्या को समझना बहुत ही आवश्यक है. सांस्कृतिक पूंजी का सिद्धांत मशहूर फ्रांसीसी समाजविज्ञानी पेअरी बॉरद्यू ने दिया था. उनका मानना था कि पूंजी के तीन स्वरूप होते हैं. आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पूंजी. आर्थिक पूंजी- पैसा, जमीन, जायदाद, फैक्ट्री आदि के रूप में होता है और यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई भी पड़ती है. परंतु सांस्कृतिक पूंजी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप दोनों में दिखाई देती है. इसके साथ ही साथ सांस्कृतिक पूंजी पुनः तीन प्रकार की होती है और यह विशेष वातावरण जिसे पेअरी बॉरद्यू हैबिट्स (आदत) कहते थे. सांस्कृतिक पूंजी का पहला प्रकार सान्निहित अवस्था (embodied state) में पाया जाता है. दूसरा रूप वस्तु की अवस्था (objectified State) में पाया जाता है. तथा तीसरा संस्थागत अवस्था (Institutional State) में पाया जाता है. सन्निहित अवस्था की सांस्कृतिक पूंजी व्यक्ति के पैदा होते ही उसके परिवार में आस-पास के पड़ोसियों आदि के साथ सामाजिकरण से आरंभ होती है. इसमें बच्चे को शिष्टाचार, भाषा, स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ आदि अनेक प्रकार की सामाजिक प्रक्रियाएं अनौपचारिक रूप से सिखाई जाती है. सांस्कृतिक पूंजी का दूसरा रूप वस्तुओं के प्रयोग में निहित है. बच्चे के घर में कौन सी ऐसी वस्तुएं हैं जिनका प्रयोग उसके जीवन को सरल बना सकता है. और बच्चा जब बड़ा होकर अन्य भूमिकाओं को ग्रहण करने समाज में जायेगा तो उन वस्तुओं का प्रयोग आसानी से करके दूसरों की नजरों में अपनी प्रतिष्ठा तथा अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि दोनों को ही स्थापित कर सकता है. वस्तुनिहित संस्कृति में टेबल मैनर्स आते हैं. आपके घर में ही सोफा सेट का प्रयोग या डाइनिंग टेबल, या टेलीफोन और टीवी का प्रयोग सिखा दिया जाता है. यहां समझना आवश्यक है कि दोनों प्रकार की सांस्कृतिक पूंजी सन्निहित अवस्था एवं वस्तुओं के अवस्था दोनों ही पूंजी के प्रयोग या उनके महत्व को व्यक्ति बच्चे के स्कूल जाने से पहले ही सिखा दिया जाता है और इस शिक्षा में अलग से पैसा या प्रयास भी नहीं लगाना पड़ता है. न ही अलग से समय. बच्चे परिवार एवं रिश्तेदारों के साथ-साथ घर में ही रह कर अनौपचारिक वातावरण में यह सब सीख लेते हैं और यह सांस्कृतिक पूंजी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बिना किसी मूल्य के हस्तांतरित कर दी जाती है. पारिवारिक परिवेश ही इसका विशिष्ट परिवेश होता है.

सांस्कृतिक पूंजी की तीसरी अवस्था संस्थागत अवस्था होती है. इसमें विशेषकर बच्चा किस स्कूल में पढ़ने जाता है, वहां का पाठ्यक्रम क्या है, और वहां पर अध्यापक एवं अध्यापिकाएं किस प्रकार बच्चे को पढ़ाते/पढ़ाती हैं. किस प्रकार के उदाहरण दिये जाते हैं, आदि आता है. यहां यह तथ्य समझना आवश्यक है कि पाठ्यक्रम या विषय वस्तु कौन बनाता है. पाठ्यक्रम में किसके नायक एवं नायिकायें पढ़ाये जाते हैं, किसके पर्व एवं मूल्य पढ़ाये जाते हैं, किसके आंदोलन आदि पढ़ाए जाते हैं. प्रकृतिक रूप से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि जो सत्तापक्ष एवं अभिजात वर्ग का होता है, उसके ही मूल्य, नायक, आंदोलन, पर्व, फल-फूल, फसल आदि पढ़ाये जाते हैं. कक्षा में अध्यापक/अध्यापिकायें उन्हीं सब का उदाहरण देते हैं. ऐसी अवस्था में सत्तापक्ष/अभिजातवर्ग के बच्चों के लिये स्कूलों की पुस्तकों के पाठ्यक्रम अपने समाज की सांस्कृतिक वस्तुओं को ही समझने की प्रक्रिया होती है. एक तरह से उनके लिये ये रिवीजन होता है. एक तो पहले ही परिवार से वे सीख कर आते हैं और स्कूल में आकर उसको रिवाइस कर लेते हैं. ऐसा गरीब एवं बहिष्कृत समाज के लिये संभव नहीं होता. उनके मूल्य, नायक, उनके पर्व एवं पकवान आदि स्कूली पाठ्यक्रम में नहीं पढ़ाये जाते. ऐसे गरीब/बहिष्कृत समाज के बच्चों के लिये स्कूली पाठ्यक्रम एक तरह से कंफ्यूजन होता है. और वे शिक्षा के साथ कदम से कदम मिला कर नहीं चल पाते हैं और पिछड़ जाते हैं.

अगर हम पेअरी बॉरद्यू की सांस्कृतिक पूंजी की अवधारणा को